विवेकी राय के ग्रामांचलिक साहित्य की सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि की प्रासंगिकता

आनन्द गौतम
(नेट/जे.आर.एफ.) शोध छात्र, हिन्दी विभाग
पी.जी. कॉलेज गाजीपुर (वीर बहादुर सिंह पुर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर, उ.प्र.)

शोध सार

साहित्यिक अपनी रचना में सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को प्रतिबिंबित करता है। इसलिए किसी साहित्य कृति का मूल्यांकन करने के लिए इस पृष्ठभूमि को देखना अनिवार्य बन जाता है। विवेकी राय ग्रामांचलिक जन–जीवन के सिद्धहस्त लेखक रहे हैं। उन्होंने अपने उपन्यास कहानी और निबंध साहित्य में सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियों को विस्तार से चित्रित किया है। उन्होंने लोकसंस्कृति के विविध रूपों, तीज त्योहारों, लोकरीतियों के साथ सामाजिक अंधविश्वास, देवी–देवता, शैक्षिक स्थिति, नारी स्थिति आदि को भी विस्तार से चित्रित किया है।

मुख्य बिन्दु–
सांस्कृतिक,
सामाजिक पृष्ठभूमि,
प्रतिबिंदित,
मूल्यांकन,
अंधविश्वास,
विवेच्य,
लोकरीतियों।

शोध प्रपत्र

भारतीय संस्कृति के मूल में सनातन ग्रामजीवन रहा है। ग्राम संस्कृति को ही भारतीय संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। समाज और संस्कृति का संबंध प्राचीन काल से है। सांस्कृतिक आदर्श का व्यावहारिक रूप संस्कार है जिसे व्यक्ति समाज से ग्रहण करता है। विवेकी राय के ग्रामाचलिक साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि देखने से पहले संस्कृति संबंधी कई विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये डॉ. बी. डी. गुप्ता के मतानुसार **"साहित्य संपूर्ण संस्कृति का एक अंश है। संस्कृति ही सामाजिक संरचना और निर्माणक इकाइयों की प्रस्थिति एवं भूमिका को प्रमाणित कर उन्हें व्यवस्थित एवं संतुलित रूप प्रदान करती है। सांस्कृतिक आदर्शों को मनुष्य व्यवहुत करने का प्रयास करता है, इन्हें आदर्श के रूप में स्वीकारने का प्रयास करता है। डॉ. बद्री प्रसाद जोशी के मतानुसार सांस्कृतिक आदर्श काल्पनिक आकाश में विचरण नहीं करता बल्कि सांस्कृतिक आदर्शों का मूल्य व्यक्ति के लिए तब संभव है, जब इन्हें सामाजिक जीवन में कर सके।"**[1]

सांस्कृतिक स्वरूप मनुष्य की अंतर्वृत्तियों से संबंधित रहता है, जो मनुष्य जीवन को सही दिशा दे सकता है, यही मनुष्य का समष्टिगत रूप रहता है। डॉ. मदन गोपाल के अनुसार **''मानव जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन अतवृत्तियों की जिस समष्टि द्वारा होता है तथा जिसके अपनाने से वह सच्चे अर्थों में मनुष्य बनने की दिशा में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं।''**[2]

इस विवेचन में स्पष्ट होता है कि साहित्य समाज संस्कार और संस्कृति एक दूसरे से घनिष्ट संबंध स्थापित कर चुके हैं। किसी भी जाति या समाज के संपूर्ण विकास को आदिम काल से परिष्कृत बनाते गए जीवन आदर्शों को लेकर उपस्थित उन सब का समग्र रूप ही उस जाति की संस्कृति का द्योतक रहता है। इस समस्त विकास यात्रा के सार रूप को लोकसंस्कृति का नाम दिया जाता है। डॉ उषाा डोंगरा के अनुसार– **''लोकसंस्कृति किसी लोकसमूह के लौकिक या आध्यात्मिक क्रियाकलापों की अखंड उपलब्धि है, जो दाय स्वरूप पूर्वजों से नई पीढ़ियों को हस्तांतरित होकर प्राप्त होती रहती है।''**[3]

ग्रामांचलिक साहित्य में प्राचीन संस्कृति सबसे अधिक सुरक्षित रही है, क्योंकि उस पर बाहरी संस्कृति का प्रभाव कम पड़ता है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय संस्कृति का रूप आध्यात्मिक था। नई संस्कृति के संपर्क से उसमें कई सुधार भी हुए। स्वतंत्रता के बाद लिखे गए साहित्य में ग्रामजीवन तथा पहाड़ी जीवन और उनकी लोकसंस्कृति तथा चेतना का प्रस्तुतीकरण समर्थ रूप में हुआ है। इस संदर्भ में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लिखते हैं **''भारतीय संस्कृति का सच्चा तथा स्वाभाविक चित्र लोकसाहित्य में उपलब्ध है। लोकसंस्कृति के वास्तविक रूप को देखने के लिए हमें लोकसाहित्य का अनुसंधान करना होगा।''**[4]

स्वातंत्रयोत्तर काल में भारतीय संस्कृति में सभी स्तरों पर परिवर्तन हुए हैं। ग्रामांचलिक लेखकों ने लोकसंस्कृति के लोकगीत, लोककथा, तीज–त्योहार, उत्सव पर्व, मनोरंजन के साधन, रूढ़ि–प्रथा बाह संस्कार, मृतक संस्कार आदि सभी आयामों पर प्रकाश डाला है। इस संबंध में शंभू सिंह ने कहा है **''अंचल विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य और उससे लिपटी हुई संस्कृति से संबंधित वहाँ रीति–रिवाज, खान–पान, रहन सहन, वेश भूषा, धार्मिक मान्यताएँ, रूढ़ियाँ लोकगीत, नृत्य, भाषा, पर्व–त्योहार सबका विवेचन उसी संस्कृति के अंतर्गत आता है।''**[5]

संस्कृति का व्यापक अर्थ किसी समाज की जीवन पद्धति से है। जिसमें उसकी कला, शिल्प विश्वास मान्यताएँ मूल्य जीवन दर्शन, संस्कार प्रथाएँ एवं धर्म आदि समाविष्ट रहते हैं। **''विवेकी राय के मतानुसार यद्यपि संस्कृति का अधिकृत और अनावित स्वरूप दुर्लभ है तथापि अविकसित ग्राम इकाइयों में जहाँ आधुनिकता का प्रकाश नहीं पहुंचा है अथवा अर्ध शिक्षित ग्रामांचलों में नहीं पुरातनता के संस्कार पूर्णतः धुल नहीं गए हैं अंशतः मानसिक अनुशासन के रूप में सांस्कृतिक प्रतिष्ठा अभी शेष है।''**[6]

इस दृष्टि से ग्रामांचलिक जन–जीवन में स्थित उसके विशिष्ट सांस्कृतिक रूपों में अनेक मूल्यवान जीवन तत्त्व मौजूद रहे हैं। आर्थिक और बौद्धिक

स्थितियों के कारण कुछ मोड़ जरूर आए हैं जिससे सांस्कृतिक जीवन जाने–अनजाने वांछित बन गया है। **''स्वतंत्रता के बाद साहित्य ग्रामोन्मुख हुआ है यह एक असाधारण सांस्कृतिक अंत प्रेरणा का द्योतक सिद्ध हुआ है। इसी पृष्ठभूमि पर विवेकी राय के ग्रामाचलिक उपन्यासो, कहानियों एवं निबंधों में हम सांस्कृतिक पृष्टभूमि को लोकगीत, लोककथा, तीज त्योहार, उत्सव पर्व, रूढ़ि प्रथा परंपरा मनौतियाँ विवाह संस्कार, मृतक संस्कार, मनोरंजन के साधन एवं मेले आदि के माध्यम से तलाशने का प्रयत्न करते है। विवेकी राय ने सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को विवेच्य विधाओं में कहाँ तक सफलता के साथ प्रस्तुत किया है. इसे देखना हमारा उद्देश्य रहा है।''**[7]

ग्रामांचलिक जन–जीवन में अज्ञान और अशिक्षा के कारण अनेक अंधविश्वासी धारणाएँ दिखाई देती हैं। जैसे ताबीज बाँधना, संतान संबंधी अवास्तविक धारणाएँ रखना, संतान प्राप्ति के लिए व्रत–उपवास करना, वंश डूबने का भय निर्माण होना, भविष्य देखना, साधु महाराज की शरण लेना. ऐसे साधु या बाबा से सामान्य जनों को लूटना शनिवार के दिन ओखल पर बैठना अशुभ मानना गुप्त धन की प्राप्ति के संबंध में गलत धारणाओं के कारण समस्याएँ खड़ी होना, स्त्री का प्रथम प्रसव नैहर में होना अशुभ मानना, सरेहि बाजार से खाली हाथ आना अशुभ समझना ओझा के साथ उनके साथियों के द्वारा गरीब, पीड़ित लोगों का गलत फायदा उठाना बीमारी के पीछे रही अस्वच्छता को दूर करने के बजाए किसी ओझा की शरण लेना बीमारी को भूत बाधा मानना, शिक्षा तथा नौकरी प्राप्ति के लिए विवाह के लिए मनौती माँगना, डिहवरों को चढ़ावा भाख देना, ब्रह्मभोज का संकल्प करना, बरसात समय पर होने के लिए ंसींचकर लोटना, रात में महिलाओं का हल चलाना, शनिवार के दिन खाद्य तेल खरीदना अशुभ मानना, सूत से चोटी बाँधने से धन–जन की हानि होती है ऐसा मानना, गाँधीजी के चबूतरे पर कालीजी की पूजा करना आदि अंधविश्वासी बातों को **''विवेकी राय के लोकऋण, सोनामाटी, समर शेष है मंगल भवन, नमामि ग्रामम् आदि उपन्यासों में सुराजी भवानी का फेर कहानी में और एक ग्रेज्युएट प्राइमरी टीचर का पत्र, नरेंद्र आसमान में जलबंदी, गाँव की गोरी, फिर बैतलवा डाल पर आदि निबंधों में चित्रित किया है। इससे ग्रामांचलिक जन–जीवन में स्थित अज्ञान और अशिक्षा के कारण अंधविश्वासी वातावरण स्पष्ट होता है।''**[8]

शिक्षा की स्थिति में विवेकी राय स्वयं अध्यापक होने के कारण ग्रामांचलिक जीवन की शिक्षा की दुरावस्था का अनुभवजन्य चित्रण किया है। आज ग्रामांचलों में संस्कार विहीन शिक्षा परीक्षा और नौकरी अभिमुख शिक्षा, नकल को बढ़ोतरी देने वाली शिक्षा, छात्रों की उदासीनता बढ़ाने वाली शिक्षा आदि का यथार्थ चित्रण विवेकी राय के विवेच्य साहित्य विधाओं में मिलता है।

''विवेकी राय ने अपनी विवेच्य रचनाओं में शिक्षा क्षेत्र में बढ़ता भ्रटाचार, शोषण, अर्थकेंद्रितता, खोखलापन, शिक्षा संस्थाओं में गैर कानूनी निर्णय से नौकरों का अनावश्यक निलंबन, वेतन में कटौती, नौकरी प्राप्ति के लिए डोनेशन्स, अध्यापकों की दयनीय स्थिति, भविष्य की आशंका से कामचोर वृत्ति, अध्यापकों का दब्बूपन आदि सभी स्थितियों का जिक्र लोकऋण, सोनामाटी,

समर शेष है, मंगल भवन, नमामि ग्रामम् आदि उपन्यासों के साथ लाटरी के रुपये, एक दिन रेल हमारी, कठनहि, थर्ड डिविजनर्स कॉन्फ्रेन्स आदि कहानियों में आया है। निबंधों में मनबोध मास्टर की डायरी के सभी निबंध, आम रास्ता नहीं है। त्रिशंकु की तरह लटके हैं निबंध, आस्था और चिंतन के प्राइमरी शिक्षा व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करने वाले निबंध, गुरु गृह गयउ पढ़न रघुराई, गाँव का मूल्य, खतरे का जंजीर आदि निबंधों से शिक्षा की दयनीय स्थिति स्पष्ट हुई है। शिक्षा की शोचनीय स्थिति में से स्वयं लेखक अध्यापक के नाते गुजर चुके हैं। इसलिए इस स्थिति के प्रति उनकी चिंता और चिंतनशील दृष्टि यथार्थ और वास्तव लगती है।"[9]

विवेकी राय के विवेच्य साहित्य विधाओं की सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि से ग्रामांचलिक जन जीवन के अंतर्बाहय संगत विसंगत चित्र को स्पष्ट किया है। ग्रामांचलिक जीवन की संस्कृति और उनके जीवन मूल्यों की रक्षा करना आवश्यक तो है, परंतु आधुनिकता एवं पाश्चात्य जीवन शैली का प्रभाव, नागरी उपभोक्ता संस्कृति और सुविधाजन्य राजनीतिक माहौल ने ग्रामांचलिक जन जीवन को क्षतिग्रस्त किया है।

संदर्भ सूची

1. डॉ. विमल शंकर नागर हिंदी के आंचलिक उपन्यास सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, प्र. सं. 1985, पृ. 13
2. डॉ. चंद्रकांत वांदिवडेकर–हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, कृष्णा, ब्रदर्स, अजमेर, प्र. सं. 1969, पृ. 23–24
3. डॉ. बी. डी. गुप्ता, साहित्य समाजशास्त्रीय समीक्षा, सीता प्रकाशन, हायरस, प्र. सं. संवत् 2046, पृ. 128
4. डॉ. मदन गोपाल–मध्यकालीन हिंदी काव्य में भारतीय संस्कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र. स. 1968,
5. डॉ. ऊषा डोगरा–हिंदी के आंचलिक उपन्यासों का लोकतात्विक विमर्श, अनुभव प्रकाशन, कानपुर प्र. सं. 1984, 180
6. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय लोकसाहित्य की भूमिका, साहित्य भवन लि., इलाहाबाद, द्वि. सं. 1970, पृ. 292
7. शंभूसिंह– रांगेय राघव और आंचलिक उपन्यास, सुशील प्रकाशन, कानपुर, प्र.स. 1979 19
8. डॉ. विवेकी राय–स्वातंत्रयोत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.
9. विवेकी राय– कालातीत, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1982, पृ.52–53